# डॉ. नीरजा माधव

उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले में कोतवालपुर नामक देहात में सन् 1962 में जन्मी डॉ. नीरजा माधव हिन्दी साहित्य में पुरजोर योगदान दे रही हैं। डॉ. बेनी माधव से विवाह के पश्चात भी शिक्षा को पूर्ण किया। उन्होंने एम.ए. (हिन्दी), पी-एच.डी की उपाधि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राप्त की। अपने कोमल हृदय की पुकार सुनकर लेखनी उठाई। इनके अब तक 'यमदीप', 'तेभ्य:स्वधा', 'गेशे जम्पा', 'अनुपमेय शंकर', 'ईहा मृग', 'धन्यवाद सिवनी' आदि (उपन्यास)। 'चिटके आकाश का सूरज', 'अभी ठहरो अंधी सदी', 'पथदंश', 'प्रेम सम्बन्धों की कहानियाँ' (कहानी संग्रह) और कुछ कविता संग्रह—'प्यार लौटना चाहेगा', 'लिखते हुए शोक गीत' प्रकाशित हैं। अपने लेखन पर उन्हें हिन्दी संस्थान लखनऊ की तरफ से यशपाल सम्मान-1998 में प्राप्त हुआ। डॉ. नीरजा माधव विविध जगहों पर पदासीन रही थीं। कार्यक्रम अधिशासी ऑल इंडिया रेडियो, दूरदर्शन, प्रसार भारती से अवकाश ग्रहण किया है।

## कथा सार

'बेठन' डॉ. नीरजा माधव की एक मौलिक एवं संवेदनशील कहानी है। इस कहानी में पशुपति (पूतान) नामक एक गरीब बच्चे की कथा को पूरी संवेदनाओं के साथ प्रस्तुत किया गया है। पूतान गाँव में रहनेवाला गरीब बच्चा है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने की अपार इच्छा है। शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह बहन के गाँव सारनाथ जाता है। यहाँ के शिक्षा अर्जन में न उसके पास युनिफार्म है, न बैग है, न किताबें हैं और न ही समय पर भोजन। वह अपनी गरीब परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपने बहन के आश्रय में पढ़ने का प्रयास करता है। शहरी शिक्षा के लिए आवश्यक साधन उसके पास न होने पर वह अपने घर वापिस चला जाता है। नीरजा माधव ने भूख और अभाव से संघर्ष करते बच्चे का मनोवैज्ञानिक चित्रण बड़े ही सुन्दरता से किया है। कहानी के अन्त में पूतान का किसी अन्य विद्यार्थी का डब्बा खाने के बदले मॅडम द्वारा डाँटा जाना कहानी को अधिक गम्भीर और प्रभावी बनाता है।

वर्तमान संवेदना शून्य शिक्षा पद्धति में उसे अपना गाँव और बेठन याद आना उसके संघर्ष विराम को ही सूचित करता है। ऐसे अनेक बच्चे आज भी वर्तमान शिक्षा पद्धति से वंचित होकर भूख से दम तोड़ते नजर आते हैं। कहानी बड़ी होकर भी पाठक को अन्त तक बाँधकर रखते हुए मन को द्रवित करती है। प्रस्तुत कहानी हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति और आर्थिक असमानता पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहानी में घटित घटना का एक सन्दर्भ आर्थिक स्तर पर आधारित आरक्षण तथा अन्य सुविधाओं के प्रति हमें अन्तर्मुख बनाता है।

देगलूर महाविद्यालय, देगलूर

# बेठन

"जीऽऽ बोड़ा लेंगी ? एकदम ताजा है।" पुतान ने लोहे के बड़े से गेट में नीचे लगी जाली से भीतर झाँकते हुए आवाज लगाई। एक महिला लॉन में बैठी सुबह-सुबह चाय पी रही थीं। आँखें अखबार के पन्ने पर उलझी हुई थीं।

"जीऽऽ बोड़ा लेंगी ?" उसने पुनः हाँक लगाई तो महिला की तंद्रा भंग हुई। उसने एक बार उपेक्षा के साथ पुतान की ओर देखा लेकिन अगले ही पल दया करते हुए उसे अन्दर बुला लिया। उसके दया-भाव पर पुतान को अन्दर ही अन्दर कचोट-सी हुई। अपने ग्लानि-भाव को छिपाने का प्रयास करते हुए उसने दरवाजे को ठेलकर भीतर प्रवेश किया। सिर से दउरी को उतारकर उसने नीचे रख दिया। महिला के चेहरे पर कई प्रश्न उमड़-घुमड़ रहे थे। पुतान को ऐसा अनुभव कई बार पहले भी हो चुका था। लोग उससे तमाम तरह के प्रश्न करने लगते, इसलिए बिना कोई अवसर दिए उसने अधीरता से पूछा—"कितना दे दें ? पाँच रुपए पाव है।" उसने लाल रंग के भीगे पुराने कपड़े में लपेटकर रखे बोड़ों को दउरी में ही खोलकर दिखाया।

"क्या नाम है तुम्हारा ?" महिला के स्वर में दुलार की झलक थी।

"जी पुतान...कितना दे दूँ ? ताजा हैं।" वह महिला को आगे किसी प्रश्न का अवसर नहीं देना चाहता था।

"यह बोड़ा है या लोबिया ? इतना गाढ़ा रंग तो लोबिया का होता है।" महिला उसे चिढ़ाने के अन्दाज में मुस्कराई। वह परेशान हो उठा।

"जी नहीं, बोड़ा है, बोड़ा। देखिए।" उसने एक बोड़े को उठाकर तोड़ा था। और उसके बीज को हथेली पर रखकर महिला के सामने कर दिया।

"ऐसे ही लोबिया भी होता है। गाँव में जानवरों को खिलाने के लिए बोते हैं लोग।" महिला का ज्ञान छलक पड़ा था।

"आप गाँव की हैं तब तो पहचानती होंगी। यह बोड़ा है। मैं भी गाँव का हूँ।" उसके स्वर में किंचित् हताशा उभर आई थी।

"किस गाँव के हो तुम ?" महिला ने पुनः दुलार से पूछा।

"कितना तौलूँ ? मुझे देर हो रही है।" उकता उठा था वह।

''पढ़ते हो क्या?''

''जी।'' उसने छोटा-सा तराजू उठा लिया।

''किस कक्षा में?''

''पाँच में। कितना दूँ?''

''एक पाव। यहाँ कहाँ पढ़ते हो?''

''जी, स्टेशन के पास वाले मांटेसरी में।'' उसने अपनी शर्ट की आस्तीन से झूठ-मूठ ही अपनी नाक पोंछी और हाथ से बोड़ा उठाकर दाहिने पलड़े में रखने लगा।

''पिताजी क्या करते हैं तुम्हारे?''

''गाँव में हैं। खेती करते हैं और कभी-कभी पूजा...।'' बताते-बताते एकाएक वह रुक गया। बिजली की गति से बोड़ा छोड़कर हथेली माथे पर पहुँची थी और पसीना पोंछने के साथ ही रोली का टीका भी उतार लाई थी।

''अरे, तुमने अपना टीका क्यों पोंछ दिया?'' महिला का ध्यान भी उसके माथे पर चला गया था। गोरे रंग के इस बालक को माथे पर रोली का गोल-सा टीका लगाए सब्जी बेचते देखकर ही उत्सुकता जागी थी और अन्दर बुला लिया था।

''जी...वो...'' वह झेंपकर हँस पड़ा। कैसे बताता कि बहिनिया ने मना किया था।

''पूजा भी करते हो?''

''जी, वो सुबह सूरज भगवान् को अर्घ्य...बप्पा ने कहा है।''

''तुम यहाँ किसके पास रहते हो?''

''अपनी बहिनिया और जीजा के साथ...लीजिए।''

उसने हड़बड़ाकर तौला हुआ बोड़ा महिला के सामने पड़ी मेज पर उलट दिया और तराजू को दउरी में रखने का उपक्रम करने लगा।

''क्या करते हैं तुम्हारे जीजा?''

''हम नहीं जानते। शायद दुकान पर। बहिनिया गुरिया से माला और तिब्बती झाला बनाती हैं।...पैसा दीजिए, देर हो रही है।'' वह महिला के प्रश्नों से उकता उठा था। बहिनिया ने मना किया था कि किसी से बहुत ज्यादा अपने बारे में बातचीत मत करना नहीं तो बप्पा के साथ-साथ उसकी भी बदनामी होगी।

महिला उठकर घर के अन्दर चली गई थी पैसे लाने।

पुतान ने बोड़ों को हाथ से इधर-उधर करते हुए अनुमान लगाया था। अभी आधा किलो के लगभग होगा। अगर कोई एक साथ ले ले तो आज पन्द्रह रुपए जुट जाएँगे। बहिनिया के घर के पिछवाड़े न जाने कैसे बोड़ा की लतर उग आई थी। फैलते-फैलते पूरी कोठरी की छत ढक गई थी। बहिनिया ने ही एक दिन उससे धीरे से कहा था कि अभी तुम्हें यहाँ कोई नहीं पहचानता इसलिए सुबह जीजा के चले

जाने के बाद एक घंटा मेहनत कर दोगे तो उसी पैसे में कुछ और मिलाकर तुम्हारी ड्रेस सिलवा दूँगी। जीजा से मत बताना। वह जानता था कि बहिनिया उसे बहुत मानती है इसीलिए गाँव से उसे यहाँ पढ़ाने के लिए लेकर आई, लेकिन जीजा के आगे वह लाचार गाय की तरह काँपती है। बेचारे जीजा भी क्या करें? अपने दो बच्चों और परिवार का गुजर-बसर ठीक से नहीं कर पाते, उसी में उसका भी बोझ। इसीलिए कभी उसने जीजा को बहिनिया से हँसकर बतियाते नहीं देखा। बस अपनी टूटी साइकिल पर झोले में टिफिन टाँग खड़र-पड़र सुबह जाना और रात में लौटना। कभी-कभी उसी झोले में सट्टी से आलू, प्याज, बैंगन तो कभी पाँच किलो चावल, दो किलो दाल भी लादे आते हैं। आते ही बहिनिया के सामने झोला पटकते हुए कहना नहीं भूलते हैं—"किफायत से चलाना। आग लगी है महँगाई में।"

उस समय पुतान को न जाने क्यों अपने ऊपर ही भार लगने लगता है। मन होता है कहीं छिप जाए। जीजा की आँखों के सामने न पड़े। अम्मा याद आती हैं। गाँव में अपने और बप्पा के लिए चूल्हे पर रोटियाँ सेंकतीं, ओसारे के बाहर खटिया डाले रात में चुपचाप भजन गुनगुनातीं-रामहिं राम रटन करु जिभिया रे...। और वह अम्मा का आँचल अपने सिर पर फैलाए उनके सीने में उकड़ूँ-मुकड़ूँ अम्मा के हृदय की धुक-धुक सुनता। कभी-कभी कल्पना करके सिहर उठता—यदि किसी दिन अम्मा की यह धुक-धुक बन्द हो गई तो...। नहीं नहीं, हे भगवान, मेरी अम्मा खूब दिन जीए। अम्मर हो जाए। हे सुरुज नारायन...। वह डबडबाई आँखों से तारों भरे आकाश में ही सूर्य भगवान् को स्मरण करता, मंत्र पढ़ता और अपनी अम्मा के लिए प्रार्थना करता। बप्पा ने उसे मंत्र रटाते हुए कहा था, इसी एक मंत्र से दुनिया के सारे मनोरथ सिद्ध होंगे। बस सुबह उठकर एक लोटा जल, अच्छत सुरुज नारायन को चढ़ाकर यह मंत्र पढ़ लिया करो।

"हूँ, लो ये पैसा बेटा।" पुतान की तंद्रा भंग हुई। उसने खड़े होकर पाँच का सिक्का पकड़ा था और अपनी जेब में डाल लिया।

"किसको दोगे यह पैसा?" महिला हँसते हुए पूछ रही थी। उसे अच्छी लगी थी वह इस समय। बिलकुल अम्मा की तरह। अम्मा भी तो इसी तरह ओसारे में बैठी-बैठी हर आने-जाने वाले का हाल-चाल लेती रहती है।

"जी, किसी को नहीं। जुटाकर ड्रेस बनवाऊँगा।"

और बिना देखे ही दउरी सिर पर रख गेट की ओर बढ़ गया। मन के किसी कोने में पश्चात्ताप का एक छोटा-सा भाव उभरा था। क्या सोचेगी यह महिला? ड्रेस बनवाने वाली बात सीधे नहीं बोलनी चाहिए थी। कह देता अपनी बहिनिया को दे दूँगा। कौन वह जाती पूछताछ करने। ऐसे तो वह न जाने क्या सोचेगी? मेरे पास ऐसी गरीबी है क्या जो अपना ड्रेस बनवाने के लिए सब्जी बेचनी पड़े? हुँह, क्या करूँ? बता दिया तो बता दिया।

पुतान ने सिर को एक झटका दिया और तेज-तेज डग भरने लगा। स्कूल जाने के लिए देर न हो जाए। जेब में रखे सिक्के को टटोला। आश्वस्त हुआ। है जेब में। कई बार पैसा भीतरी तह तक नहीं जाता है तो कहीं टुप्प से चू जाता है रास्ते में। सारी मेहनत फेल। बप्पा कहते हैं, अपनी पढ़ाई के लिए जो संघर्ष करता है वही आगे जाता है। मोटे गद्दों पर सोने वाले और मोटरगाड़ियों में घूमने वाले लोगों के बच्चे बिगड़ जाते हैं अकसर। ईश्वरचन्द्र को गली की लाइट में खड़े होकर पढ़ना पड़ा था। पूरी दुनिया में कितना नाम कमाया। यहाँ तो जीजा के आने के बाद कोठरी का दरवाजा जो हनकर बन्द होता है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता। बाहर कोई लाइट-वाइट तो है नहीं कि उसी की रोशनी छनकर भीतर आ जाए। कौन जाए विद्यासागर बनने। बहिनिया कहती है कि दिन में दो-चार घंटे पढ़ लेने पर वह तेज हो जाएगा पढ़ाई में। थके-मादे जीजा को जरा-सी रोशनी होने पर भी नींद नहीं आती।

"आ गया पुतान?" कोठरी से सटे छोटे बरामदे से बहिनिया की आवाज आई थी। उसने बचे हुए बोड़े ले जाकर बहिनिया के सामने रख दिए।

"आज इसी की सब्जी बना दो बहिनिया। पूरा नहीं बिका।" उसने उड़ती दृष्टि से बहिनिया की ओर देखा। ओसारे में लकड़ी की अँगीठी का धुआँ अँडसा हुआ था। फुँकनी से फूँक मार-मारकर बहिनिया उसे धधकाने का प्रयास कर रही थी। बगल में थाली में गुँधा आटा रखा था।

"आज अभी तक रोटी नहीं बनी? जीजा क्या लेकर गए?" पुतान ने आश्चर्य से पूछा। प्रतिदिन नियम से बहिनिया उनके लिए इस समय तक कुछ न कुछ खाना तैयार कर देती थी। कभी रोटी-सब्जी तो कभी चीनी के साथ ही रोटी टिफिन में बन्द कर देती। उसी में से एकाध रोटी लेकर वह भी स्कूल चला जाता था। लेकिन आज रोटी तैयार न देखकर उसे आशंका हुई थी।

"हूँ? बहिनिया, जीजा क्या लेकर गए आज?" बहिनिया से कोई उत्तर न पाकर उसने पुनः पूछा।

"मेरा मांस खाकर गए। बरसात में सारी लकड़ी मेहरा गई है। क्या अपना हाथ-गोड़ लगाकर पकवान बना देती।" बहिनिया झुँझलाई थी। पुतान ने स्वयं को रोक लिया। आज जरूर उसके सोते में ही बहिनिया और जीजा में कोई तक-झक हुई है। बोड़ा लेकर जाते समय भी वह बहिनिया से कुछ पूछ न सका था।

ओसारे में खटर-पटर सुनकर उसे सब सामान्य ही लगा था। जीजा जा चुके थे उस समय तक। पुतान को समझ में नहीं आ रहा था कि वह इस समय क्या करे? स्कूल जाए या झुँझलाई बहिनिया को मनाए। वह जाकर बहिनिया के पास खड़ा हो गया—"ये पाँच रुपए का बोड़ा आज बिका है। कहो तो दौड़कर टाल से सूखी लकड़ियाँ ले आऊँ।" उसने जेब से पाँच का सिक्का निकालकर सामने कर दिया।

"नहीं, ले जाकर अपने बेठन में सँभालकर रख दे। इधर खर्च करूँ या उधर क्या फर्क पड़ता है?" बिना सिर उठाए बहिनिया ने उसे आदेश दिया था। और धुँधुआई अँगीठी पर गर्म होने के लिए तवा चढ़ा दिया। पुतान बिना कुछ बोले अपनी चारपाई की ओर बढ़ा था। झूलती बाध वाली चारपाई के नीचे जमीन पर पड़े पुराने से टिन के बॉक्स को अपनी ओर खींचा और जनेऊ में बँधी छोटी-सी चाबी से उसका ताला खोला था। चरमराहट की आवाज के साथ बॉक्स का मुँह खुला था। शोर सुनकर दो चार झींगुर और तिलचट्टे बॉक्स में इधर-उधर दौड़ने लगे। पुतान ने मुँह से फेंककर उन्हें उड़ाने का प्रयास किया तो कपड़ों के नीचे कोनों में छिप गए। गाँव से आते समय अपने पुराने कपड़े, गमछा और प्राइमरी स्कूल में ले जाने वाला बेठन किताबों-कॉपियों सहित इसी बॉक्स में रखकर ले आया था वह। बहिनिया ने ही यह छोटा-सा पुराना ताला दिया था उस लगाने को ताकि उसके छोटे बच्चे बॉक्स में रखी किताबों को फाड़ें न। लाल रंग के बेठन में ही वह अपने जुटाए पैसे भी रखता था। बेठन देखकर अम्मा पुनः याद आईं। कितनी जिद करने के बाद अपनी पुरानी वाली साड़ी का एक कोना फाड़कर अम्मा ने उसके लिए बेठन बनाया था। चौकोर कपड़े के चारों कोनों पर पतली डोरी सिलते हुए अम्मा भुनभुनाई थीं— "सनकी कहीं का। दुनिया अब झोले में कॉपी-किताब लेकर जाती है स्कूल। इसको बाबा आदम के जमाने का बेठन चाहिए।"

"नहीं, लालमनिया लाती है, बाँके ले आता है, सितरवा ले आती है। कई लोग ले आते हैं बेठन।" उसने अपनी जिद के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत किया।

"अरे, उन सबों को झोला या बैग नहीं अँट रहा होगा इसलिए ले आते होंगे बेचारे। गरीबी किसी का मुँह देखकर थोड़े ही आती है।"

अम्मा की उँगली में डोरी सिलते हुए सुई चुभ गई थी। खून की एक बूँद उँगली की पोर पर चमक उठी। उसने लपककर अम्मा की उँगली को अपने मुँह में डाल चूस लिया। अम्मा बिगड़ पड़ी थीं उसके ऊपर।

"यह क्या पागलपन है। खून मुँह में जाकर कुछ नुकसान कर दे तो। मान लो सुई में जंग लगी हो और खून के साथ वह भी...।" कहते हुए अम्मा ने उससे पानी से दो-तीन बार कुल्ला करवाया था। आँखों में उसके प्रति दुलार बढ़ गया था। जब-जब अम्मा के भीतर उसके लिए प्यार उमड़ता है, वह सबसे पहले उनकी आँखों से ही जान लेता है।

"ले आ अपनी कॉपी-किताब। बेठन में बाँधना बता दूँ।" अम्मा ने सिले जा चुके बेठन को जमीन पर फैलाते हुए कहा।

उत्साह में वह दौड़ता हुआ कोठरी में गया था और अपनी पुरानी पेंट से सिले झोले को उठा लाया था। अम्मा के सामने ही जमीन पर झोले को उलटकर सारी किताबें और कॉपियाँ फैला दीं।

देगलूर महाविद्यालय, देगलूर

"सबसे नीचे चौड़ी वाली कॉपियाँ और किताबें, फिर उसके ऊपर पतली वाली और उसके ऊपर कलम, पेंसिल और इधर बगल में खाने-पीने का कोई सामान रूमाल में गठियाकर रख लेना चाहिए।" अम्मा ने बड़े मनोयोग से किताबों और कॉपियों को एक के ऊपर एक सरियाते हुए उसे समझाया। अम्मा के चेहरे पर उसकी जिद पूरी करने के सन्तुष्टि-भाव के साथ ही पिछली बातें याद आने की भी खुशी झलक रही थी।

"अम्मा, तुम भी ले जाती थीं बेठन?" उसने पूछ लिया।

"हाँ रे। तब कहाँ इतना बैग-बस्ता चला था। अंग्रेजों का राज, देश में गरीबी। अपनी दादी, अम्मा या बुआ का पुराना पेटीकोट या साड़ी ही फाड़कर हम लोग बेठन बना लेते थे। उसी में बगल में कपड़े के एक टुकड़े में जोन्हरी का लावा या चना-लाई गठियाकर रख लेते थे। दोपहर में एक साथ बैठकर चबाते थे और पानी पी लेते थे।" अम्मा अतीत परोस रही थीं उसके सामने।

"अभी भी हमारे स्कूल में लड़के-लड़कियाँ दाना ही गठियाकर लाते हैं। दोपहर में जो स्कूल की तरफ से पीला भात मिलता है, उसको लेकर सब छींट देते हैं। कभी-कभी तो उसमें इतने बड़े-बड़े पिल्लू दिखाई पड़ते हैं।" उसने अपनी तर्जनी के बीच वाली पोर पर अंगूठे से पिल्लू का आकार बताया तो अम्मा घिन के मारे ओक् कर बैठी थीं। वह हँस पड़ा अम्मा के भोलेपन पर।

"तू नहीं न खाता है पीला भात स्कूल में?"

"नहीं, कभी-कभी दलिया बनती है। अच्छी होती है तो ले लेता हूँ।"

एक ठो ये भी चोंचलेबाजी ही शुरू हुई है सरकार की तरफ से। अरे पढ़ाई, लिखाई गत की होती नहीं और दोपहर का भोजन दे रहे हैं मट्टी मिला सब। ग्राम प्रधान और नेता जी खा-खा के लाल हो रहे हैं। एक और लूट-खसोट का जरिया घर बैठे पकड़ा दिया उन सबके हाथ में। नौटंकी। मास्टर सब सुर्ती ठोंक-ठोंक बहिनिया-भतरिया करते हैं। महीने में नोट गिनकर टंच। लड़िका पढ़े चाहें उप्फर पढ़ें। देख नहीं रहे हो, कितने कम हो गए इन स्कूलों में लड़के। जिसके पास जरा-सी सुविधा हुई नहीं कि भेज दे रहा है दूसरे स्कूल में अपने बच्चे को। पढ़ाई नहीं होगी तो कोई क्या करेगा?" बेठन बाँधते हुए अम्मा बड़बड़ा रही थीं।

वह ऊपरी मन से उनकी बात सुन रहा था। भीतर खुशी की एक लहर दौड़ रही थी। एक नई चीज पाने की खुशी। कल वह भी अपने दोस्तों के सामने बेठन की डोरी खोलकर किताबें निकालेगा, फिर बाँध देगा। फिर खोलेगा और बगल से पेंसिल निकालेगा। दोपहर में दाना भी बेठन से ही निकालेगा। कितना अच्छा लगता है, बेठन में एक छोटी-सी गृहस्थी बाँधे सिर पर रखकर चलना। डोरी की गाँठ के बीच-बीच से गृहस्थी का ताकना-झाँकना। बस्ते में तो सब कुछ ढका होते हुए भी सब कुछ खुला-खुला-सा लगता है। जरा-सी लापरवाही हुई नहीं कि सारा सामान

झोला बाहर उगल देता है। कक्षा में जब कभी किताब निकालनी होती हैं तो मुँह घुसाए झोले में खोजते रहो किताब। तब तक एकाध छड़ी पीठ पर पड़ ही जाती है। बेठन रहने से यह सब दिक्कत नहीं। भर्र से डोरी खोली, सारी किताबें सामने। वह मुस्करा उठा था अपनी जीत पर। दूसरे दिन सुबह जल्दी ही हाथ-मुँह धोकर तैयार हो गया था स्कूल जाने के लिए। बेठन में कॉपी किताब रखकर दो-तीन बार बिना प्रयोजन ही उसे खोला, बाँधा। तीसरी बार गट्ठी जरा कसके लग गई थी। ताकत लगाकर खींचा तो बेठन की एक डोरी टूटकर अलग हो गई। चीखकर अम्मा को बुलाया था—"ये कैसे बनाया?" उसके चेहरे पर गुस्से और क्षोभ का भाव मचल उठा।

अम्मा ने देखा तो सारा हाल समझ गई थीं। हँसकर बोलीं—"सँभालकर नहीं गाँठ लगाएगा तो टूट जाएगी डोरी। इससे पहलवानी थोड़े ही दिखानी है। हलके से गाँठ लगाओ। देखो ऐसे।" अम्मा ने बीच से टूटी डोरी को गाँठ लगाकर फिर से जोड़ दिया था और उसे बेठन बाँधना सिखाया। लेकिन उसका मन खिन्न हो उठा था। बेठन में दो-दो गाँठें उसे चुभ रही थीं।

अम्मा ने उसकी उदासी देखी तो सांत्वना दी थीं—"आज ले जा इसे। बाद में नई डोरी सिलकर लगा दूँगी।"

लेकिन नई डोरी सिलकर लगाने की नौबत नहीं आई थी। बहिनिया रक्षाबंधन में गई तो अम्मा ने उसके भविष्य की चिन्ता बहिनिया के सामने रखते हुए अपनी लाचारी सुनाई—"पछली पछाड़ी भगवान् ने दिया है पुतान को। उसकी पढ़ाई की चिन्ता। अच्छे स्कूल में पढ़-लिख लेता तो शायद जिन्दगी बन जाती। यहाँ अपने बप्पा का हाल देख रही हो। खेती में कुछ पोसाता नहीं। धरम-करम भी अब कौन करवा रहा है। कोई भूले-भटके करवाता भी है तो दस-पाँच रुपया मुश्किल से निकालता है दक्षिणा के नाम पर। जगह-जगह ठेका खोल दिया सरकार ने। ठेका पर जाकर दारू चढ़ा लेंगे सब लेकिन पूजा-पाठ में मन नहीं लगेगा। दो रुपए का माला-फूल भगवान् को चढ़ाएँगे सब तो तुरंतै तराजू लेकर बैठ जाएँगे कि भगवान् ने बदले में उनको कितना दिया। गजबै जुग-जमाना आ गया।"

बहिनिया से बात करते-करते अम्मा विषय से भटक गई थीं। बगल में बैठे उसी ने याद दिलाया—"अम्मा, तुम मेरी पढ़ाई की बात कर रही थीं और लगीं ठेका-पुरान बाँचने।"

"हाँ रे, आग लगे ऐसे खियाल में। भूल जाती हैं बातें। हाँ तो शीला, मैं चाह रही थी कि अपने इस छोटे भाई को सँभाल देती बिटिया। अच्छे स्कूल में पढ़ लेगा तो किसी लायक बन जाएगा।" अम्मा आशा भरी आँखों से बहिनिया की ओर देख रही थीं। बहिनिया के चेहरे पर असमंजस का भाव साफ-साफ दिखाई पड़ रहा था।

"देख बेटी, ना मत कहना। मैं जानती हूँ कि तेरे पाहुन का मिजाज ठीक नहीं है। अकेली कमाई, वह भी प्राइवेट और इतना बड़ा खर्चा। लेकिन पुतान भी तेरे बच्चे की तरह ही है। मैं यहाँ से अनाज-पानी भेजती रहूँगी। उधर का खर्चा मैं उठा लूँगी। आखिर वहाँ खरीदकर ही खाती है तू भी। यहाँ अन्न तो किसी तरह मिल जाता है खेती से लेकिन पैसे का दर्शन मुश्किल है। तेरे बप्पा हाड़तोड़ मेहनत करते हैं खेत में तब साल भर का खर्चा निकल पाता है। तुझसे क्या छिपा है। सब हाल तो तू जानती ही है।" अम्मा दीन स्वर में बहिनिया के आगे रुआँसी हो उठीं। पुतान का मन भर आया। एक बार सोचा—साफ मना कर दे अम्मा को। मुझे नहीं जाना तुमको और बप्पा को छोड़कर। लेकिन अगले ही पल किसी अच्छे स्कूल में पढ़ने का कौतूहल उसकी भावना पर भारी पड़ गया था और वह चुपचाप बहिनिया का उत्तर सुनने लगा।

"अम्मा, बिगाड़ अपनों में ही होता है। इसी से डरती हूँ। हमारी भी हालत तो जान ही रही हो। इनका व्यवहार...।"

अम्मा ने बहिनिया की बात को बीच में ही लपक लिया—"शीला, पाहुन का व्यवहार बिगड़ैल जरूर है पर तू तो अपनी है। इतना समझता है पुतान। फिर कौन जिन्नगी जनम भर रहने जा रहा है। किसी तरह रह-सह लेगा बेटी।" अम्मा ने अपनी ममता उड़ेलते हुए पुतान का सिर सहलाया था। उसके कलेजे में एक हूक-सी उठी थी। बहिनिया के यहाँ चले जाने पर अम्मा कितनी अकेली हो जाएँगी। सारा काम अकेले ही करेंगी। सुबह-शाम बरदवानी से रहटा और गोहरी निकालना, सरकारी हैंडपंप से बाल्टी में पानी ढोकर लाना, रात में अपनी और बप्पा की खटिया बिछाना। बप्पा के तो हाथ-पैर वह दबा देगी लेकिन उसके कौन दबाएगा? यहाँ रहने पर ये सारी जिम्मेदारियाँ वह स्वयं उठाता है। आकुल होकर वह अम्मा की गोद में सिर रखकर लेट गया।

"ठीक है अम्मा, कल हमारे साथ भेज दो इसे।"

बहिनिया का दबा स्वर उसे उद्वेलित कर रहा था। कुछ देर पहले का कौतूहल बहिनिया के स्वीकार और अम्मा से अलग होने की कचोट में खो गया।

रात में अम्मा और बप्पा के पैर दबाते हुए उसकी आँखें बार-बार भर आ रही थीं। अम्मा ने भी उसे जल्दी से ही अपने पास चिपकाकर सुला दिया था। बहिनिया बगल की चारपाई पर खर्राटे भर रही थी। वह अम्मा के सीने से चिपका जाग रहा था। बप्पा आज कई बार उठ-उठकर पेशाब करने जा रहे थे। उन्हें भी नींद नहीं आ रही थी। एकाएक अम्मा की हिचकी से वह चौंककर उठ बैठा—"अम्मा, तुम रो रही हो?" उसकी हथेली अम्मा की आँखों पर पहुँच गई थी। गरम-गरम आँसुओं से अम्मा के गाल भीगे हुए थे। उसके बैठते ही अम्मा ने आँचल से आँसुओं को सुखा लिया और उलटे पूछा—"तू अभी तक जाग रहा है?"

"हूँ। नींद नहीं आ रही है।" वह पुनः अम्मा से चिपककर लेट गया।

"ठीक से रहना वहाँ। जीजा कुछ बोलें भी तो माख मत लेना। तुम्हारी बहिन ब्याही हैं उनसे।" अम्मा समझा रही थीं।

"हूँ।" वह सुन रहा था। जीजा उसे कभी अच्छे नहीं लगते थे।

"कमाई कम है, खर्चा अधिक है, इसीलिए पाहुन चिड़चिड़े हो गए हैं।" अम्मा जैसे स्वयं को समझा रही थीं।

"सड़क पर ठीक से आना-जाना। गाड़ी-घोड़ा देखकर चलना। बेसम्हार चलाते हैं आज के लौंडे।"

"हूँ।"

"अब सो जा।" अम्मा ने उसे अपने से कसकर लिपटा लिया। उनके हृदय की धुक-धुक सुनते हुए उसे नींद आ गई थी। सुबह बहिनिया के साथ आने के लिए बॉक्स में अपने कपड़े रख रहा था तो अम्मा ने उसका बेठन पकड़ाया।

"इसे भी रख ले। जब तक बहिनिया किताब-कॉपी का इंतजाम न कर ले, तब तक इसी से पढ़ना। डोरी भी नहीं सिल पाई।" अम्मा बुदबुदाई थीं।

बेठन लेते हुए वह रुआँसा हो उठा। अम्मा अन्दर वाली कोठरी में चली गई थीं। बहिनिया के खोइंछा के लिए सूप में चावल, गुड़ और हल्दी की गाँठ रखकर बाहर निकलीं तो उसने झट अपनी शर्ट की आस्तीन से आँखें पोंछ लीं।

"ले, यह दस रुपए अपने बेठन में ही गठियाकर रख ले। कभी कुछ खाने का मन करे तो खा लेना।" अम्मा ने अपने आँचल के खूँट में बँधे एक दस के नोट को उसे पकड़ाया था और दूसरा पाँच का नोट सूप में पड़े चावल पर रख दिया।

"आज स्कूल मत जाओ। खाना भी नहीं तैयार है और ये..." बहिनिया की झुँझलाई-सी आवाज उसके कानों में पड़ी तो वह चौंक उठा और अतीत के गलियारे से बाहर निकल आया। कब से बॉक्स खोले वह बेठन को निहार रहा था। जल्दी से पाँच का सिक्का अम्मा के दिए नोट से सटाकर रखा। पहले से पड़े हुए कुछ सिक्के नए साथ की आहट पा छनक उठे। बॉक्स बन्द करके वह दौड़ता हुआ बहिनिया के सामने जाकर खड़ा हो गया था। सीली लकड़ी धुआँ-धुआँ हो रही थी। फूँक मारते-मारते बहिनिया का मुँह और आँखें लाल हो गई थीं। बालों की दो-चार नन्ही लटें माथे के पसीने से चिपक गई थीं।

"ले आओ बहिनिया, मैं फूँकूँ।" वह उकड़ूँ बैठ गया बहिनिया के पास।

"चल हट। जरा-सी लकड़ी तो धूप में डाल नहीं सकता, आया है फूँकने।" बहिनिया का उपेक्षा भरा स्वर उसे अन्दर तक झकझोर गया। अपराधी की तरह वह अपने स्थान पर खड़ा हो गया।

"मैं कह रही थी कि आज मत जाओ स्कूल। अभी धूप हो जाएगी तो लकड़ी धूप में डाल देंगी। हो सकता है कुछ देर में जलने लायक हो जाए। अब तो 'ये' चले ही गए बिना खाए-पिए।"

बहिनिया ने धुआँई लकड़ी को अँगीठी से बाहर खींच लिया और उस पर लोटे का पानी उड़ेल दिया। छन्-न्-न्-न् करके लकड़ी से अन्तिम धुआँ उठा था और शान्त हो गया।

पुतान ने धीरे से अपनी बात रखी—"बहिनिया, आज सारे बच्चों को सारनाथ लॉन के जैन मन्दिर ले जाएँगी मैडम। वही भगवान् श्रेयांसनाथ के मन्दिर जहाँ एक बार तुम घुमाने ले गई थीं। एक कार्यक्रम है। सभी बच्चों को बुलाया गया है।"

"रोटी बन ही नहीं पाई है आज। क्या लेकर जाओगे।" बहिनिया खाली बर्तन बटोर रही थी।

"कोई बात नहीं। आज नहीं ले जाऊँगा। शायद वहाँ कार्यक्रम में बच्चों को भी कुछ मिलेगा।"

उसके चेहरे पर मायूसी पसरी हुई थी। रोटी का नाम सुनने पर याद आया था कि उसे सुबह से ही थोड़ी भूख महसूस हो रही थी। मैडम का रौद्र रूप भी याद आ रहा था। पता नहीं क्यों, उसे देखते ही बिफर पड़ती थीं। कभी देर के लिए टोकतीं तो कभी तिब्बती बैग के लिए।

"ये क्या लेकर चले आते हो लामाओं की तरह। स्कूल का बैग क्यों नहीं ले आते?" वह चुपचाप सिर झुकाए खड़ा हो जाता। बहिनिया ने अपने हाथ से बनाए बैग में से छाँटकर उसे दिया था। इसकी कढ़ाई थोड़ी बिगड़ गई थी, बस अब मैडम को कैसे समझाए कि...बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं जिन्हें वह नहीं समझा सकता मैडम को और बहुत-सी ऐसी बातें होती हैं जिन्हें मैडम नहीं समझा पातीं उसे। जैसे उस दिन कक्षा में मैडम स्कॉलरशिप का फॉर्म भरवा रही थीं। गरीब बच्चों से। वह भी उठकर उनके पास चला गया था।

"मैडम जी, मुझे भी चाहिए स्कॉलरशिप। मैं भी गरीब हूँ।"

"तुम क्या हो?" मैडम ने सिर उठाकर पूछा।

"जी? मैं भी गरीब हूँ।" वह हड़बड़ा गया था।

"मेरा मतलब, अनुसूचित जाति के हो?" मैडम ने अपना प्रश्न स्पष्ट किया।

"जी हाँ, जी नहीं, जी क्या मतलब?" वह पूरी तरह हकबका गया था।

"अच्छा चलो, अपने स्थान पर जाकर बैठो। बेवकूफ कहीं का। तुम्हें नहीं मिल सकती यह स्कॉलरशिप।"

वह निराश होकर अपनी सीट पर जाकर बैठ गया था।

पुतान स्कूल पहुँचा तो थोड़ी देर हो चुकी थी। प्रार्थना सभा के बाद बच्चे कतार में लगे सड़क के उस पार श्रेयांसनाथ की प्रतिमा के पास जाने के लिए तैयार थे। जल्दी से जाकर वह भी पीछे खड़ा हो गया था लेकिन मैडम की नजर में बच न सका।

"ओए लामा जी, आप इधर आइए।" उनके व्यंग्य से पुकारते ही सबकी हँसी की भनभनाहट उसके तन-मन को छेद गई थी। वह सिर झुकाए उनके सामने आकर खड़ा हो गया।

"तुम यूनिफॉर्म में नहीं हो इसलिए कार्यक्रम में नहीं जाओगे। तुम्हारी सजा यही है कि तुम स्कूल में सभी बच्चों के बैगों की रखवाली करोगे। दाई भी रहेगी यहाँ। और हाँ, घर जाने से पहले मुझसे मिलकर जाना। तुम्हारे गार्जियन के लिए मैसेज देना है।" कहते हुए मैडम खट्-खट् सैंडिल की आवाज निकालते आगे-आगे चलने लगीं। उनके पीछे-पीछे बच्चों की कतारें श्रेयांसनाथ जन्मस्थली की ओर बढ़ने लगीं।

पुतान कुछ देर तक खड़े होकर बुझे मन से सबको देखता रहा और फिर जाकर कक्षा में बैठ गया। कुछ देर दीवारों को यूँ ही घूरता रहा और फिर डेस्क पर सिर टिका फफक पड़ा। एकांत पाते ही मन का उफान आँखों के रास्ते बह निकला। अधेड़ उम्र की दाई चुपचाप आकर उसके पास खड़ी हो गई थी। कुछ देर हिचकियों से हिलते उसके शरीर को निहारती रही और फिर स्नेह से पीठ पर हाथ रखते हुए बोली—"क्या बात है बेटा? ड्रेस बनवा क्यों नहीं लेते? एक महीने से ऊपर हो गए तुम्हारे एडमिशन को। आखिर मैडम जी भी क्या करें? कितने दिन छूट दे सकती हैं?"

पुतान ने अपनी डबडबाई आँखें ऊपर उठाईं। बोला कुछ नहीं।

"बोलो। क्या बात है? पापा क्या करते हैं?" दाई पूछ रही थी और पुतान की रुलाई बढ़ती जा रही थी।

"अच्छा मत रोओ। खाना खाकर आए हो कि नहीं?" उसने उसे प्यार से पुचकारते हुए बात दूसरी ओर घुमाने का प्रयास किया। भूख से ज्यादा स्नेह की मद्धिम आँच ने उस दुःख को बढ़ा दिया। वह दाई की गोद में सिर झुकाकर फफक पड़ा। अधेड़ दाई के हृदय की ममता छलककर बाहर आ गई। उसे अपने बेटे की तरह छाती से सटाए ही उसने उसके बैग में टटोलकर खाने वाला डिब्बा खोजा था।

"टिफिन नहीं है?" उसने पुतान से पूछा।

"ऊँ हूँ।" खिसियाहट से भर उठा वह।

"खाना भी नहीं खाकर आए?" दाई के इस प्रश्न पर बस वह चुपचाप उसकी ओर ताकता रहा।

"रुको। किसी से कहना नहीं।" दाई ने बगल वाले बच्चे के बैग से टिफिन बॉक्स निकाला था और खोलकर सामने रख दिया। दो पराँठे के साथ आलू की भुजिया सब्जी पुंतान को निमंत्रण दे रही थी, लेकिन हिम्मत नहीं पड़ रही थी खाने की। उसने इनकार में सिर हिलाना चाहा लेकिन सिर अपनी जगह से इंच भर भी न डोला।

"खा लो एक पराँठा जल्दी से। मैं नहीं कहूँगी किसी से। उसे भी क्या पता चलेगा। सोचेगा, मम्मी ने एक ही रखा होगा। वहाँ कार्यक्रम में भी तो कुछ मिलेगा ही।"

दाई के स्वर में ममत्व की सघनता थी। अम्मा की तरह दुलार भरा आग्रह सामने था। उसने लपककर एक पराँठा अपनी हथेली पर रख, थोड़ी-सी भुजिया सब्जी उसी पर रख ली और जल्दी-जल्दी बड़े-बड़े कौर बनाकर खाने लगा। आँखों से ढुलके आँसुओं में मोती की चमक आ गई थी। दाई ने अपने आँचल से उन्हें पोंछा था और टिफिन बॉक्स बन्द करके वापस बच्चे के झोले में रखने लगी थी।

पराँठा खा लेने के बाद एक अपराधबोध से उसका मन उद्वेलित होने लगा। बेचैनी में उठकर वह बाहर गेट के पास जाकर खड़ा हो गया। दाई प्रिंसिपल ऑफिस के सामने अपनी जगह पर जाकर बैठ गई। गेट के सामने सड़क के उस पार का दृश्य साफ दिखाई पड़ रहा था पुतान को। खुले आकाश के नीचे श्रेयांसनाथ की आदमकद मूर्ति ध्यानावस्थित मुद्रा में दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के ऊपर रखे बैठी थी। ऊँचे प्लेटफॉर्म पर स्थापित इस मूर्ति के नीचे घास के बड़े से मैदान में उसके स्कूल के बच्चे यूनिफॉर्म पहने बैठे थे। काले पत्थर से तराशी मूर्ति के बाल घुँघराले और आँखें बन्द थीं। कानों का निचला भाग कंधों को छूता हुआ दिखाई दे रहा था। मूर्ति के चरणों के आगे ही अतिथियों के बैठने की व्यवस्था थी। सामने बैठे उसके स्कूल के बच्चों के हाथों में कबूतर, ललमुनिया, तोता और भी न जाने कितने प्रकार की जीवित चिड़ियाँ थीं। हर बच्चे ने अपनी-अपनी चिड़िया को सँभालकर पकड़ा था।

पुतान को आश्चर्य हुआ। दौड़कर दाई के पास गया था—"मैं भी वहाँ लॉन में चला जाऊँ? सभी बच्चों को चिड़िया मिली है, सचमुच वाली।"

कुछ देर पहले का अपराधबोध विस्मृत हो गया था और अब उसका स्थान कौतूहल ने ले लिया था।

"नहीं, मैडम मुझे डाँटेगी। तुम यहीं से देख लो। सब दिखाई-सुनाई तो दे रहा है।" दाई ने साफ मना कर दिया तो वह सिर झुकाए पुनः गेट पर आ गया और सड़क के उस पार ध्यान से देखने लगा।

मंच पर रखे माइक से मुख्य अतिथि बोल रहे थे—"बच्चो, आज पर्यूषण-पर्व है। जैन धर्म का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पर्व। 'जीओ और जीने दो' विषय पर संगोष्ठी रखकर आज के प्रासंगिकता को और बढ़ा दिया है आयोजकों ने। पूरे विश्व में जिस तरह धर्म और संस्कृति का संघर्ष हो रहा है उसमें ऐसा लग रहा है कि अगला विश्वयुद्ध धर्म को लेकर होगा, ऐसे में यह विषय सर्वथा उपयोगी है। किसी को कष्ट न पहुँचाना हमारा ध्येय होना चाहिए। जैन धर्म में फूल तोड़ने को भी हिंसा की श्रेणी में रखा गया है। आज सभी लोग अपनी-अपनी मान्यताओं और स्वार्थ के कारण एक-दूसरे को कष्ट पहुँचा रहे हैं। आपके हाथों में पकड़े गए इन पक्षियों को

आज मुक्त करके हम विश्व को 'जीओ और जीने दो' का सन्देश देंगे। मेरे तीन तक गिनती गिनते ही आप लोग पक्षियों को आकाश की ओर छोड़ देंगे—एक-दो-तीन।''

पुतान रोमांच से भर उठा। एक साथ कई कबूतर, तोते और नन्ही चिड़ियाँ आकाश में पंख फड़फड़ाकर उड़ गए थे। बच्चे खड़े होकर खुशी में तालियाँ बजा रहे थे। सभी के दोनों हाथ आसमान की ओर और चेहरे भी ऊपर की ओर उठे थे। एक अद्‌भुत दृश्य उपस्थित हो गया था वह। सैकड़ों पक्षी आकाश में उन्मुक्त विचरण कर रहे थे और नीचे बच्चों का सम्मिलित कोलाहल प्रसन्नता का भाव व्यक्त कर रहा था। पुतान लोहे के गेट की जाली पर चढ़कर खड़ा हो गया। उसे बहुत अच्छा लग रहा था। आज ड्रेस रही होती तो वह भी तोता या कबूतर उड़ाता। उसका मन कचोट उठा। आज जाकर वह बहिनिया से कहेगा।

''हे पशुपति, उतरो गेट से। मैडम जी आ रही हैं।'' दाई उसे स्कूल वाले नाम से पुकार रही थी। सचमुच सामने से मैडम और बच्चों का झुंड चला आ रहा था। वह जल्दी से लपककर अपनी कक्षा में जाकर बैठ गया। धीरे-धीरे सभी बच्चे आकर अपनी कक्षा में बैठ गए।

''हे पशुपति, तुमको मैडम जी बुला रही हैं।'' दाई कक्षा में आकर पुकारने लगी।

उसका हृदय धड़क उठा। न जाने क्या कहें मैडम। मरियल कदमों से वह प्रिंसिपल के कक्ष में पहुँचा था और सिर झुकाकर खड़ा हो गया।

''सुनो, कल अपने गार्जियन को बुलाकर ले आना। एक महीना हो गया तुम्हारे एडमिशन को। मैंने पन्द्रह दिन का समय दिया था। आज तक न तुम्हारी ड्रेस बन पाई और न ही पूरी किताबें-कॉपियाँ और बैग ही हो पाया। इस तरह से पढ़ाई नहीं हो सकती।'' मैडम का स्वर कड़ा और उपेक्षा भरा था। उसने सहमकर अपना सिर और झुका लिया।

''सुन रहे हो न?'' उसकी चुप्पी पर वे झल्ला उठी थीं।

उसने चौंककर ''जीऽऽ'' कहा।।

''हाँ, एक स्टूडेंट के कारण मैं पूरे स्कूल का डिसिप्लिन नहीं खराब कर सकती। समझे।''

''जी।'' वह अब भी सिर झुकाए था।

''मैम, मेरा टिफिन कोई खा गया। ये देखिए, मम्मी से कहकर मैंने दो पराँठे रखवाए थे...ये इतना-सा बचा है।'' उसकी कक्षा का साथी शुभंकर रोते हुए मैडम के पास आ गया था। पुतान के पैरों के नीचे लगा जैसे धरती न हो। उसकी पिंडलियाँ थरथराने लगी थीं और आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा।

''दाई को बुलाओ।'' मैडम ने गरजकर कहा तो दाई स्वयं ही भीतर चली आई थी।

"दाई, इस बच्चे का टिफिन कोई...।" मैडम जलती आँखों से दाई को घूर रही थीं। पुतान ने दयनीय दृष्टि से दाई की ओर देखा।

"हम क्या जानें मैडम टिफिन-विफिन।" दाई साफ मुकर गई तो पुतान की जान में जान आई। शायद अब वह बच जाए। लेकिन मैडम पर जैसे भूत सवार हो गया था। अपनी कुर्सी छोड़कर वे उसकी ओर बढ़ी थीं।

"तुम और दाई थे विद्यालय में। बताओ किसने की यह हरकत? कल को किसी बच्चे का टिफिन खोलकर जहर मिला दिया जाएगा और कोई पता नहीं चलेगा। बताओ।" मैडम ने उसका कान कसकर पकड़ लिया। दाई जाने लगी तो मैडम ने जोर से डाँटा उसे—"रुक जाओ। तुम्हारी भी शिकायतें बहुत आ रही हैं आजकल। लापरवाही करती हो तुम विद्यालय में। नौकरी सही-सलामत चाहती हो तो आज इस चोरी का पता लगना ही चाहिए। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ मेरे विद्यालय में।"

पुतान का कान अब भी मैडम की चुटकी में जकड़ा हुआ था। दाई की नौकरी जाने की बात सुनकर उसे घबराहट हुई। बेचारी दाई, उसके कारण उसकी नौकरी चली जाएगी। पलभर में उसने निर्णय लिया था—"मैडम, दाई ने नहीं, मैंने खाया है एक पराँठा। भूख..." अभी उसकी बात पूरी भी नहीं हुई थी कि एक झन्नाटेदार थप्पड़ उसके गाल पर आकर गिरा था। वह लड़खड़ाकर दरवाजे की चौखट पर गिर पड़ा। मैडम ने कॉलर पकड़कर उसे पुनः उठाया और बाहर की ओर धकेलते हुए कहा—"जाओ, कल अपने गार्जियन को लेकर आना तब कोई बात होगी। जाओ, अभी निकल जाओ स्कूल से।" मैडम चीख रही थीं और बच्चे अपनी-अपनी कक्षाओं से झाँक रहे थे।

वह भारी कदमों से गेट की ओर बढ़ रहा था। उसे जीजा का बिगड़ैल चेहरा याद आ रहा था। परसों रात में ही तो उसे लेकर बहिनिया और जीजा में तक-झक हुई थी। रात में उसकी झिलंगा खटिया के नीचे रखे आटे के टिन को हटाते हुए जरा सी घरघराहट से जीजा की नींद खुल गई तो उखड़ पड़े थे बहिनिया पर। वह अपनी खटिया में उकड़-मुकड़ होकर नींद में होने का बहाना करने लगा। जीजा बड़बड़ा रहे थे—"न धेरिया में गुन, न बाबा का दहेज। एक तो खुद ही खटते-खटते जिन्दगी नरक है, उस पर से दहेज में यह पुछिल्ला लेकर चली आई है। कलेक्टर बनाने लाई है। कमाई लाद देगा कलेक्टर बनके। किताब, कॉपी, जूता, टाई, जींस, कपड़ा और ऊपर से अढ़ैया भर भोजन। हुँह, न दिन को चैन, न रात को आराम। खटो तो समझ में आए।"

पुतान सोच रहा था कि बहिनिया उसकी तरफ से कुछ बोले लेकिन वह बस इतना ही कह सकी—"कौन मैं अपनी मर्जी से लेकर आई। अम्मा ने जिद की थी इसलिए...।" आगे वह चुप हो गई। पुतान का हृदय मसोस उठा था।

स्कूल से अपमानित होकर लौटते हुए इस समय भी उसके मन और मस्तिष्क में युद्ध छिड़ा हुआ था। मैडम की सूचना वह कैसे जीजा को देगा? बहिनिया तो आएगी नहीं स्कूल। जीजा भी आकर क्या करेंगे? उल्टे ये सारी बातें सुनकर और उखड़ पड़ेंगे। अम्मा याद आने लगी थीं। गाँव का स्कूल और बेठन में बँधी कॉपी-किताबें याद आई थीं। चारों तरफ से कसकर बँधी गाँठ और कसने लगी थी। लेकिन गाँठों की फाँक के बीच से अम्मा मुस्करा रही थीं। अपने सीने से उसे चिपकाए, भजन गुनगुनातीं—'रामहिं राम रटन करु जिभिया रे...' वह और जोर से लिपटा जा रहा था उनके सीने से। उसकी धुक-धुक में बाहर के सभी शोर पीछे छूट रहे थे। मैडम की चीख, जीजा की डाँट और बहिनिया का ठंडा स्वर। एक निर्णय के साथ वह तेज कदमों के साथ अपनी बहिनिया के घर की ओर बढ़ चला था। सारनाथ से अपने घर जाने के लिए किराए भर के पैसे जुट गए थे उसके बेठन में।